पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार गाथा १३
राजकोट पंच कल्यानक
तारीख ०९-०२-१९८९, प्रवचन नंबर ११४

शुद्धात्मा का स्वरूप क्या है वो स्पष्टरूप से आया है, बहुत स्पष्टरूप से आ गया है। बहुत से भी बहुत स्पष्टरूप से आ गया है, एक बात। और यह शुद्धात्मा का अनुभव कैसे हो सकता है, वो भी बात साफ इसमें आ गई है। किसी को पूछने की जरूरत नहीं पड़े, इतना स्पष्टीकरण कुंदकुंदाचार्य भगवान (ने) खुद ने और टीकाकार अमृतचंद्राचार्य भगवान ने भी किया है।

तो आज नेमिनाथ भगवान को केवलज्ञान होनेवाला है। तो आज की बात अभी तक जो आई, हमने स्वाध्याय किया १३वीं गाथा का, उसके निचोड़-साररूप आज बात आनेवाली है। ध्यान देकर सुनना! उपयोग बाहर जाएगा तो ख्याल में नहीं आएगा। इतनी मानसिक एकाग्रता तो श्रोता को होनी ही चाहिए। और अध्यात्म शास्त्र को सुनने के लिए मानसिक एकाग्रता हो जाती है। रुचिवाले जीव का उपयोग बाहर नहीं जाता है। सुनते-सुनते अंदर में कुछ, अंदर में वो कार्य होता है; अकेला सुनना नहीं होता है। कोई-कोई अपूर्व मानसिक परिणति भी आत्मा की ओर झुक जाती है। बाद में उस मानसिक ज्ञान का भी व्यय होकर, भावेन्द्रिय का व्यय होकर आत्मज्ञान होता है। ऐसी बात इसमें है।

देखो! यह **बाह्य (स्थूल) दृष्टिसे देखा जाए तो:- जीव-पुद्गलकी अनादि बंधपर्यायके समीप जाकर एकरूपसे अनुभव करनेपर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं,** हैं **और एक जीवद्रव्यके स्वभावके समीप जाकर अनुभव करनेपर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं; (वे जीव के एकाकार स्वरूप में नहीं हैं;)**। यानि जीव का जो एक ज्ञायकभाव है, उसको अंतर्दृष्टि से देखने से ये नवतत्त्व का भेद दिखाई नहीं देता है। दिखाई नहीं देता है इसका कारण क्या है? कि वो भेद, अभेद में भेद नहीं है इसलिए दिखाई नहीं देता है। उसमें है पर्याय और दिखती नहीं है - ऐसा नहीं है। पर्याय का ही उसमें अभाव है। पर्याय का पर्याय में सद्भाव है मगर परिणाम का त्रिकाली सामान्य एकरूप भगवान आत्मा में परिणाम का अभाव है। तो ऐसे शुद्धात्मा के सन्मुख जब परिणति होती है, उपयोग आता है, तो नौ का भेद अभूतार्थ है। अभूतार्थ यानि उसका लक्ष छूट जाता है। वो बहिर्तत्त्व है। नवतत्त्व (बहिर्तत्त्व है)। अंतर में जाते ही वो बहिर्तत्त्व दिखाई नहीं देता है। इतनी बात चार line (पंक्ति) की तो हो गई।

इसलिये इन नव तत्त्वोंमें भूतार्थनयसे एक जीव ही प्रकाशमान है। वहाँ तक आया था, अब आगे। **इसीप्रकार अंतर्दृष्टिसे देखा जाए तो:-** बाह्य स्थूलदृष्टिसे (देखने) की बात हो गई। अब अंतर्मुखदृष्टि से देखने से...

अंतर्मुखदृष्टि का स्वरूप क्या है? कि जो उपयोग बहिर्मुख था उस उपयोग की जाति बदल जाती है। जो भावेन्द्रिय पूर्व पर्याय तक थी... भावेन्द्रिय यानि पाँच इंद्रियों का व्यापार तो पहले से ही बंद हो जाता है। चिंतवन के काल में पाँच इंद्रियों का विषय, व्यापार बंद हो जाता है; क्षय नहीं होता है

(बल्कि) बंद हो जाता है, लब्ध हो जाता है और मानसिक ज्ञान का व्यापार चालू होता है। तो ये बाद में मानसिक भावेन्द्रिय का जो व्यापार (है) वो भी थोड़ी देर के लिए अटक (रुक) जाता है। **मन पावे विश्राम।** (नाटक समयसार, उत्थानिका १७), भावमन का, भावमन का क्षय नहीं होता है। भावमन का क्षय होवे तो तो केवलज्ञान होता है और (यदि) भावमन का उपयोगात्मक व्यापार चालू रहे तो अनुभूति नहीं हुई है।

तो ये जो भावमन का व्यापार पूर्व पर्याय तक था, उस भावमन में भी आत्मा ही आया था और अतीन्द्रियज्ञान में (भी) आत्मा ही आ जाता है। भावमन का विषय छहद्रव्य नहीं रहता है। पूर्व पर्याय की संधि की बात चलती है, जिसका व्यय होकर अनुभूति होती है। भावमन का विषय छहद्रव्य नहीं रहता है, छूट जाता है। नवतत्त्व, भेद, मानसिकज्ञान में भेद जानने में नहीं आता है। मानसिकज्ञान में भी (नहीं आता)। मानसिकज्ञान में अकेला ज्ञायक परमात्मा जिसका अभी एक समय के बाद प्रत्यक्ष अनुभव होनेवाला है, उसके पूर्व परोक्ष अनुभूति होती है।

ऐसी **अंतर्दृष्टिसे देखा जाए तो:-** ऐसा पाठ है। इसका क्या अर्थ? कि जो अनादिकाल से उपयोग बहिर्मुख था, उसमें आत्मा का दर्शन बिल्कुल आता नहीं है। अब अंतर्मुख ज्ञान होता है, वो ज्ञान की जाति पलट जाती है। भावेन्द्रिय का व्यय होकर अतीन्द्रियज्ञान का उत्पाद होता है, नया। अनादि से ऐसा अतीन्द्रियज्ञान का उत्पाद नहीं था। ऐसे अतीन्द्रियज्ञान का उत्पाद होता है, सहज। उस अंतर्मुखदृष्टि में, उस ज्ञान के भावश्रुतज्ञान में 'अकेला शुद्धात्मा, उपादेयतत्त्व वही मैं हूँ' - उसमें शुद्धात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। उस ज्ञान के परिणाम का नाम स्वप्रकाशक ज्ञान है। उस ज्ञान की पर्याय का नाम परप्रकाशक नहीं है, स्वपरप्रकाशक भी नहीं है; अकेला स्वप्रकाशक है। बात पहले सुन लेना। बाद में तर्क करना कि सामर्थ्य स्वपरप्रकाशक का (है)। अभी वो बात deposit (जमा) रखकर क्या बात चलती है - उसको ख्याल में पहले ले लेना। बाद में सब विचार करके बैठाना। कोई परेशानी नहीं (उसमें)।

यह ज्ञान अंतर्मुख होता है तो भावश्रुतज्ञान जिसका नाम है, मानसिकज्ञान का नाम द्रव्यश्रुत है और जो ज्ञान शुद्धात्मा को प्रसिद्ध करता है, आत्मख्याति है न, (टीका का) नाम, आत्मा की प्रसिद्धि होती है। इन्द्रियज्ञान में आत्मा की प्रसिद्धि नहीं होती है (बल्कि) आत्मा तिरोभूत हो जाता है। ऐसे अंतर्मुख ज्ञान में भगवान आत्मा का दर्शन होता है, उसका नाम स्वप्रकाशक ज्ञान है। स्वप्रकाशक लक्षण से शुद्धात्मा की प्रसिद्धि होती है। और निर्विकल्पध्यान के काल में ही, एक तो स्वप्रकाशक ज्ञान की व्याख्या की, (और) दूसरा उस ही निर्विकल्पध्यान में उस ही समय, काल भेद नहीं, निश्चय से स्वपरप्रकाशक की पर्याय प्रगट होती है।

पहले निश्चय से स्वप्रकाशक कहा, जिसमें उपादेयतत्त्व, ज्ञायक की अहंबुद्धि आ गई उसके द्वारा। उस ही समय ज्ञान का स्वभाव सविकल्प होने से; सविकल्प का अर्थ राग नहीं, खंडज्ञान की बात नहीं है, अतीन्द्रियज्ञान की बात है। केवलज्ञान की पर्याय भी सविकल्प है। आहाहा! सविकल्प का क्या अर्थ है? कि जिस ज्ञान ने ज्ञायक को जाना उस ही समय अतीन्द्रिय आनंद आता है। सिद्ध भगवान की जाति का आनंद। क्या कहा? कि जो ज्ञायक का दर्शन हुआ अतीन्द्रियज्ञान में, उस ही समय अतीन्द्रिय

आनंद प्रगट होता है। अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा का दर्शन होने से जैसा अतीन्द्रियज्ञानमय महापदार्थ है, ऐसा ही, उसकी जाति का अतीन्द्रियज्ञान नया प्रगट होता है। तो उसका नाम तो स्वप्रकाशक है। मगर उस ही समय आनंद की पर्याय प्रगट होती है, तो आनंद का परिणाम भी उस ज्ञान में जानने में आता है। द्रव्य भी जानने में आया और द्रव्याश्रित आनंद भी जानने में आया तो ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञान ने ज्ञायक और ज्ञान को जाना, और भेद की अपेक्षा से ज्ञान ने आनंद को भी जाना। तो ज्ञान है स्व और आनंद है पर; अंदर का स्व-पर है। बाहर के स्व-पर की बात आएगी, घबराना नहीं। हमारी बात आएगी कि नहीं आएगी? आएगी। आहिस्ते-आहिस्ते सब आएगा। आहाहा! समझने जैसी बात है। आज केवलज्ञान का दिवस है। आहाहा! भगवान को केवलज्ञान प्रगट होनेवाला है आज। आहार-दान है न, बाद में तो केवलज्ञान (होगा)। आहाहा!

क्या कहा? कि अंतर्मुख दृष्टि से देखने से, ऐसा शब्द है। इसकी एक लाइन की चलती है बात। **अंतर्दृष्टिसे देखा जाए तो:-** अंदर में क्या दिखाई देता है? गुजराती में तो एकदम आवे, शुं देखाय छे? अंदर में क्या दिखाई देता है? उसमें तो, हिंदी में तो शब्द जरा व्यवस्थित करना पड़े। आहाहा! अंदर में जब उपयोग गया तो उसमें क्या दिखाई देता है? आहाहा!

तीनलोक का नाथ, भगवान सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा का दर्शन होता है। तब उस समय एक अपूर्व, अनंतकाल से नहीं आया हुआ अतीन्द्रिय आनंद वो भी प्रगट होता है। वो भी ज्ञान उसको जानता है। तो द्रव्य को जाने और ज्ञान ज्ञान को भी जाने भेद अपेक्षा से अंदर में और आनंद को भी जाने - उसका नाम निश्चय से स्वपरप्रकाशक है।

१. स्वप्रकाशक

२. अकेला 'स्वपरप्रकाशक' नहीं; 'निश्चय से स्वपरप्रकाशक', जिसमें पर की अपेक्षा (है ही नहीं)।

आहाहा! अंदर के निर्विकल्पध्यान के काल की बात चलती है। उपयोग अंदर में है उस समय स्वप्रकाशक और स्वप्रकाशकपूर्वक स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट हो जाता है। और बाद में बाहर निकलता है - सविकल्पदशा आती है, तो एक तो निश्चय स्वपरप्रकाशक प्रगट हो गया। तो निश्चय स्वपरप्रकाशक जिसको प्रगट हुआ है, ख्याल रखना -

१. स्वप्रकाशक

२. निश्चय से स्वपरप्रकाशक

ऐसे साधक को सविकल्पदशा में आत्मा भी जानने में आ रहा है और उपकारी देव-गुरु-शास्त्र वो भी जानने में आये तो उसका नाम 'व्यवहार से स्वपरप्रकाशक' (है)। ये तीनों प्रकार सम्यग्ज्ञानी की दशा में होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु: फिर से।

पू. लालचंदभाई: फिर से। इसमें क्या है? अपने तो आत्मा की भावना ही चलती है न।

मुमुक्षु: पुनरोक्ति दोष इसमें नहीं है।

पू. लालचंदभाई: इसमें पुनरोक्ति दोष नहीं आता है। आहाहा!

फिर से, क्या कहा? **अंतर्दृष्टिसे देखा जाए तो:-** अंदर में क्या दिखाई दिया? और कैसे दिखाई दिया? ये कैसे स्वप्रकाशक है? और कैसे स्वपरप्रकाशक (है)? आहाहा! ये स्वपरप्रकाशक की बात की बहुत चर्चा चलती है। इसलिए खुलासा है। आहाहा!

फिर से। क्या? कि अंतर्दृष्टि से देखने से बहिर्मुखदृष्टि चली गई, बंद हो गई। व्यापार, इन्द्रियज्ञान का व्यापार थोड़े समय के लिए बंद हो जाता है। इन्द्रियज्ञान का, भावेन्द्रिय का क्षय नहीं होता है; आहाहा! क्षय हो तो केवलज्ञान होगा। (नेमिनाथ भगवान को) आज होगा, आज होगा। और जिसको आत्मदर्शन हुआ (है) उसको भी होनेवाला है। आहाहा!

तो अंदर का स्वप्रकाशक, उपादेय की मुख्यता (से) है। फिर से आया न? उपादेय की मुख्यता से स्वप्रकाशक है और जानने की मुख्यता से स्वपरप्रकाशक है, मगर निश्चय स्वपरप्रकाशक है, ख्याल में रखना। आहाहा! और बाद में वो साधक सविकल्पदशा में आया, निर्विकल्पध्यान तो लंबा चलता नहीं (है), (क्योंकि) शुरुआत का है न, शुरुआत। आहाहा! तो सविकल्पदशा में आया तो अतीन्द्रियज्ञान की परिणति तो चालू है। उपयोग नहीं रहा मगर परिणति (चालू है), परिणति छूटती नहीं है। आहाहा! उस परिणति में भगवान आत्मा का दर्शन निरंतर चालू है। खाते, पीते, सोते, बैठते, उठते, गृहस्थी में, व्यापार-रोजगार में, राजा हो, चक्रवर्ती हो कोई, तो भी वो परिणति छूटती नहीं (है)। आहाहा!

भरत महाराजा की परिणति छूटी नहीं। आहाहा! ६०,००० वर्ष सुना है, कुछ फेरफार (आगे-पीछे) हो तो समझ लेना। ६०,००० वर्ष तक तो लड़ाई में गए। आहाहा! तो भी निरंतर अछिन्न धारावाही ज्ञान से आत्मा का अनुभव चालू है, परिणतिरूप। उपयोगात्मक (तो) कभी-कभी उपयोग, ऐसा लिखा है न रहस्यपूर्ण चिट्ठी में। लंबे अंतराल में, लंबे काल में गृहस्थ को भी अनुभव होता है। लंबे काल की व्याख्या, टाइम नहीं लिखा। समझ गए? क्योंकि सबको एक सरीखा नहीं होता। वह केवलीगम्य है और अनुभवगम्य है, दो बात।

तो निश्चय से स्वपरप्रकाशक ज्ञान उत्पन्न हुआ अंदर में; और सविकल्पदशा में आया तो आत्मा को भी जानता है और अपने गुरु को भी जाना कि आप हमारे उपकारी हैं, आहाहा! देव-शास्त्र-गुरु को भी जाना, उसका नाम व्यवहारनय से स्वपरप्रकाशक है। व्यवहार क्यों कहा? कि एक तो आत्मा स्व में लिया और पर में परद्रव्य लिया तो व्यवहार हो गया। आहाहा! ऐसा (१)स्वप्रकाशक-निश्चय, जानने के लिए अंदर के अंदर (२)(निश्चय) स्वपरप्रकाशक, और बाहर निकले तो (३)व्यवहार स्वपरप्रकाशक - ऐसी दशा साधक की होती है - एक बात। दूसरी बात - मुनिराज की बात तो क्या करें, क्या कहें? वो तो अपूर्व है। मगर चतुर्थ गुणस्थानवाले, पंचम गुणस्थानवाले गृहस्थ को भी कभी-कभी निर्विकल्पध्यान तो आता है। तब किसी दफा निर्विकल्पध्यान में केवलज्ञान का दर्शन हो जाता है। आहाहा!

किसका केवलज्ञान? इस आत्मा की भावी पर्याय जो उत्पन्न होनेवाली है, उस केवलज्ञान परिणत आत्मा का दर्शन कभी-कभी हो जाता है। वो बात तीन जगह पर है। शास्त्र का आधार देने से श्रद्धा बनती है। एक तो श्रीमद् राजचंद्रजी में आता है - विचारदशासे केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है, मुख्य नयके हेतुसे केवलज्ञान वर्तता है (श्रीमद् राजचन्द्र, पत्र ४९३) - (ऐसा) आता

है। वे एकावतारी पुरुष हैं। गृहस्थ भी एकावतारी होता है। ये पंचमकाल की बात है, हों! ये श्रीमद् राजचंद्रजी पंचमकाल के जीव, जन्मे पंचमकाल में, एकावतारी हैं। सोगानी जी एकावतारी हैं। आहाहा! ऐसे कोई-कोई जीव भी, गृहस्थ अवस्था में भी एकावतारी हो सकते हैं। आहाहा! 'ना' की बात नहीं है इधर। 'हाँ' की बात है। आहाहा!

तो एक तो श्रीमद् राजचंद्रजी में है ये बात। दूसरा अपने समयसार में भावार्थ में दो-तीन जगह पर ऐसा है। अभी मेरे पास वो पुस्तक नहीं (है), नहीं तो मैं आधार भी आपको बता दूँ। है, समयसार में है। जयचंद पंडितजी ने वो लिखा है। आहाहा! और गुरुदेव ने कहा कि ये श्रुतज्ञान की पर्याय केवलज्ञान को बुलाती है 'आओ, आओ, इधर आओ', समझे?

और एक बार रात्रि को चर्चा में गुरुदेव ने वो प्रश्न लिया अपनेआप (ही)। उन्होंने फरमाया कि सम्यग्दृष्टि को भी कभी-कभी केवलज्ञान का दर्शन होता है। तो रात्रि चर्चा थी न, तो एक भाई ने कहा कि वह तो दृष्टि की अपेक्षा से है न? कि नहीं! ज्ञान की अपेक्षा से कहता हूँ। अरे! श्रुतज्ञान में केवलज्ञान का दर्शन? हाँ! होता है। वो बैठना कठिन है, मालूम है हमको, हमको सब मालूम है। आहाहा! मगर (ऐसी) स्थिति है, ज्ञानी ने फरमाया है।

और तीसरी बात, एक नागसेन मुनि हो गए, भावलिंगी संत। उनका एक तत्त्वानुशासन नाम का शास्त्र है। उसमें वो फरमाते हैं। कल तो मेरे पास वो कॉपी थी कागज में, मगर आज वो (नहीं लाए)। नियमसार में कल रखी थी। कल कहना था मगर कल पंद्रह मिनट का टाइम था तो टाइम नहीं रहा और आज टाइम रहा तो वो पत्र, वो शास्त्र मेरे पास नहीं है। आहाहा!

तत्त्वानुशासन शास्त्र में नागसेन मुनि भावलिंगी संत फरमाते हैं कि, आहाहा! कभी-कभी हमको तो अरिहंत का दर्शन होता है। तो शिष्य ने कहा कि ये क्या बात है? अभी अरिहंत तो हैं नहीं, अरिहंत तो हैं नहीं। आहाहा! वो प्रवचनसार की ८० नंबर की गाथा की थोड़ी इसमें संधि है। जरा सुनना! आहाहा! शिष्य ने कहा कि ये तो पंचमकाल है। अभी तो केवलज्ञान का तो सद्भाव इस क्षेत्र में नहीं है, महाविदेहक्षेत्र में है वो अलग बात है। तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि वो बात झूठ-मूठ नहीं है, मृगजल जैसी झूठ-मूठ (नहीं है)। आहाहा! भाव-अरिहंत का दर्शन होता है। क्या? भाव-अरिहंत का दर्शन (होता है)। आहाहा! तो ऐसी अलौकिक बात, कोई अपूर्व बात है!

और दूसरा एक नय प्रज्ञापन नाम का शास्त्र छपा था इधर से, राजकोट से। तीस साल पहले की बात है। गुरुदेव के व्याख्यान, गुरुदेव के प्रवचनसार के (व्याख्यान में) आखिरी परिशिष्ट में ४७ नय हैं। समयसार में ४७ शक्तियाँ हैं, प्रवचनसार (के) ४७ नय के व्याख्यान हैं (प्रज्ञापन नाम मे)। और ये ४७ नय में से १४वें नंबर का नय एक द्रव्यनय है। वो जयपुर से 'वीतराग-विज्ञान' निकलता है। निकलता है कि नहीं? उसमें स्पष्टीकरण आया था। १४वें नंबर पर द्रव्यनय है, द्रव्यनय। द्रव्यनय का ऐसा है स्वरूप कि भूत और भावी पर्याय का वर्तमान में दर्शन हो जाता है। आहाहा! क्या कहा? यह ज्ञान की ताकत, अतीन्द्रियज्ञान की ताकत कोई अचिंत्य है। आहाहा! शंका नहीं करना। समझने के लिए आशंका की छूट है, समझने के लिए (आशंका की छूट है)। आहाहा! तो इस द्रव्यनय का स्वरूप ऐसा है कि भावी पर्याय(रूप) जो परिणमित होनेवाला है द्रव्य, ऐसे द्रव्य का दर्शन अभी हो जाता है।

आहाहा! और आगे चलकर स्व का तो ख्याल आता है मगर पर का भी ख्याल आ जाता है। आहाहा! अपूर्व चीज है! ज्ञान की ताकत! दूसरे जीव के भी भावी (भविष्य) का ख्याल आता है। ज्ञानी गंभीर होता है। एक को कहना और एक को नहीं कहना तो खलबलाहट हो जाती है। इसलिए (ज्ञानी) बोलते नहीं हैं। आहाहा!

श्रीमद् राजचंद्रजी हो गए। अरे! एक समय की पर्याय की क्या सामर्थ्य और ताकत है - उसका (ही) विश्वास न आवे तो आत्मा का विश्वास कहाँ से आवे? श्रीमद् राजचंद्रजी ने एक दफा वानर-बंदर; हिंदी में क्या कहते हैं? बंदर। बंदर पेड़ पर बैठा था। देखा (और) बंदर को कहा, बंदर को कहा, जैसे सिंह महाराज को कहा था न मुनिराज ने। (तो कहा) बंदर जी, आपकी सिद्ध पर्याय होने के लिए थोड़ी देर लगेगी। सिद्ध पर्याय का दर्शन (हो गया) तिर्यंच की। अरे! चमड़ी तिर्यंच की है, आत्मा तिर्यंच कहाँ है? आहाहा! भगवान आत्मा अंदर विराजमान है। उसकी भावी पर्याय जो अंदर में पड़ी है, उसमें से निकलनेवाली है, उस निकलनेवाली पर्याय का दर्शन अभी हो जाता है। आहाहा! बहुत आधार अभी देने हैं, बाकी हैं। शास्त्र का आधार मैं देता हूँ। आहाहा! धीरे-धीरे, बात गंभीर है थोड़ी। आहाहा!

बंदर को कहा कि सिद्ध पर्याय होने के लिए थोड़ा टाइम लगेगा तेरे को, उतावल (जल्दी) नहीं करना। आहाहा! और दूसरे दिन अंबालालभाई की धर्मपत्नी; श्रीमद्जी तो जंगल में, खेत (वाड़ी) में रहते थे। तो वहाँ रोजाना टिफ़िन लेकर वो बहन आती थी। तो एक बार क्या हुआ! कोई मेहमान आ गए, कोई। गृहस्थी में तो टाइम लगता है न। तो थोड़ा एक घंटा, डेढ़ घंटा लेट हो गईं। तो श्रीमद्जी तो बैठे थे और अंबालालभाई ने उसको-धर्मपत्नी को कहा, "बहुत देर हो गई। कृपालुदेव के आहार का टाइम हो गया।" आहाहा! श्रीमद्जी ने कहा, "भैया! उसके प्रति गुस्सा मत करो। वह मोक्ष जानेवाला जीव है।" भाई! सम्यग्दर्शन तो था नहीं, नौ तत्त्व का नाम आता नहीं था। आहाहा!

मुमुक्षु: आठवें भव में मोक्ष होगा।

पू. लालचंदभाई: ऐसा कुछ है, आठ भव। बोलो! आठवें भव में उसका मोक्ष होनेवाला है। ये श्रुतज्ञान की ताकत कोई अचिंत्य है।

अभी एक शास्त्र का आधार देता हूँ। एक माइल्लधवल ने लिखा है 'नयचक्र', जिसका अनुवाद कैलाशचंद्रजी पंडित ने थोड़ा विस्तार किया है हिंदी टीका में। तो इस शास्त्र में ऐसी बात आई है, एक श्लोक है कि जैसे केवलज्ञान में भूत, भविष्य और वर्तमान की पर्याय केवलज्ञान में जानने में आती हैं; आज केवलज्ञान का दिवस है न? आज केवलज्ञान का दिवस है। अपने को केवली का दर्शन आज होगा, नेमिनाथ भगवान के केवलज्ञान का दर्शन आज होगा। आहाहा!

तो माइल्लधवल (द्वारा रचित नयचक्र) के अंदर एक श्लोक है कि जैसे केवली भगवान, परमात्मा, सर्वज्ञ देवाधिदेव अरिहंत तीनकाल-तीनलोक को वो जानते हैं, ऐसे ही नयज्ञान-श्रुतज्ञान में भूत, भविष्य और वर्तमान जानने में आ जाता है। उपयोगात्मक हो न हो वो बात अभी नहीं लेना, क्योंकि केवली भगवान को तो प्रत्यक्ष उपयोगात्मक है; और साधक को तो ये तीनकाल-तीनलोक का ज्ञान, ज्ञान में तो है मगर उपयोगात्मक नहीं है और कभी-कभी किसी का ख्याल में आ जावे तो उसको आ जाता है कि आठ भव में वो बहन मोक्ष में जायेगी। आहाहा! सम्यग्दर्शन नहीं था (बहन को)। प्रभु!

जरा धीरज, शांति से बैठाने की बात है। आहाहा! वो वाद-विवाद का विषय (या) तकरार का विषय नहीं है। तकरार समाप्त करने का काल है ये।

तो ऐसे आचार्य भगवान समयसार की १३वीं गाथा में फरमाते हैं कि **अंतर्दृष्टिसे देखा जाए तो:-** आहाहा! यह बात चलती है। एक शब्द है, **इसप्रकार अंतर्दृष्टिसे देखा जाए तो:- ज्ञायक भाव जीव है**, ज्ञायकभाव जीव है। आहाहा! **और जीवके विकारका हेतु अजीव है;** जीव के जो परिणाम होते हैं, परिणाम। आत्मा परिणामी है; परिणामी द्रव्य ज्ञेय है। परिणामी द्रव्य ज्ञेय है, हेय भी नहीं और उपादेय भी नहीं (है)। आहाहा!

कल रात प्रदीप झांझरी आया था। उसके साथ थोड़ी बातचीत हुई थी तो अभी याद आ गया। आहाहा! ये शशिभाई भी थे और प्रदीप का छोटा भाई भी था। आहाहा! प्रदीप का नाम क्यों आता है, उसमें भी थोड़ा (रहस्य) है। आहाहा! उसकी धर्मपत्नी का नाम अर्चना है, जो अपने बाबूजी की लड़की (है)। आहाहा! उसका थोड़ा-थोड़ा विचार आया। तो कहा परिणामी द्रव्य, परिणामी; द्रव्य परिणामी है। अन्यमति कहते हैं कि सर्वथा अपरिणामी ऐसी चीज नहीं है। परिणामी है; परिणमता है समय-समय पर **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ५, सूत्र ३०) है।

तो परिणामी द्रव्य ज्ञेय है; हेय भी नहीं (है) और उपादेय भी नहीं (है)। तो परिणामी द्रव्य में ही उपादेयतत्त्व और हेयतत्त्व है, अंदर में ही। परिणामी द्रव्य ज्ञेय एक है, ज्ञेय एक है। देवचंदजी! आहाहा! परिणामी द्रव्य ज्ञेय एक है; सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ वो एक ज्ञेय है, परिणामी द्रव्य। उसमें अपरिणामी भी है और परिणाम भी है। तो अपरिणामी उपादेय है और परिणाम हेय है। प्रदीप है कि नहीं इधर? आया है? नहीं आया? अच्छा! (मुमुक्षु:-सामने बैठा है।) अच्छा!

क्या कहा? कि परिणामी द्रव्य है। पर्याय सापेक्ष द्रव्य का नाम परिणामी है और पर्याय निरपेक्ष द्रव्य का नाम अपरिणामी है। ओहो! परिणामी में से अपरिणामी निकाल ले। आहाहा! वो अपरिणामी सामान्य शुद्धात्मा उपादेय है। जब उपादेयतत्त्व पर दृष्टि आती है तब निर्विकल्पध्यान आ जाता है, तब परिणाम का लक्ष छूट जाता है, परिणाम का लक्ष (छूट जाता है)। परिणाम तो है, परिणाम अलोकाकाश में नहीं गया; आहाहा! मगर परिणाम का लक्ष छूट जाता है, द्रव्य का लक्ष आता है तो अनुभव होता है।

तो इधर चलती है बात कि **ज्ञायक भाव जीव है**, **ज्ञायकभाव जीव है और जीवके विकार** ये पुद्गल का विकार नहीं है, जीव का विकार। **विकार** यानि कषाय की बात नहीं है; विशेष कार्य, **विकार** का अर्थ विशेष कार्य। आहाहा! आशीष भी आ गया है। अच्छा है! विकार यानि विशेष कार्य, इसका अर्थ है (इधर)। जैसे विभाव शब्द आता है न? तो विशेष भाव (लेना), विभाव का अर्थ कषाय (ही) नहीं लेना।

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहां समजवुं तेह;
त्यां-त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह (आत्मसिद्धि शास्त्र, गाथा ८)

तो:- ज्ञायकभाव जीव है..., **ज्ञायकभाव जीव है और जीवके विकार...** ये पुद्गल का विकार नहीं लेना। जीव का विशेष है। जीव सामान्य भी है और जीव के परिणाम का नाम विशेष है। परिणाम विशेष में उत्पाद-व्यय होता है। सामान्य में उत्पाद-व्यय नहीं होता, वो तो ध्रुवतत्त्व है। आहाहा!

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् है न? वो हेय (भी) नहीं है और उपादेय भी नहीं है; वो ज्ञेय है। आहाहा! क्या कहा? कि **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** है पदार्थ। तत्त्वार्थ सूत्र जी में है न सब? तो वो ज्ञेय है, उसमें (से) ध्रुवतत्त्व निकाल लो। तो ध्रुव में उपादेयबुद्धि आ गई तो परिणाम का लक्ष छूट गया तो परिणाम हेय हो गया। हेय का नाम (अर्थ) उसका लक्ष छूटता है। हेय द्वेषवाचक नहीं है और उपादेय रागवाचक नहीं है। आहाहा! वीतराग मार्ग में राग-द्वेष की बात तो है ही नहीं। आहाहा!

तो अन्तर्दृष्टि से देखो तो परिणामी में अपरिणामी भी है और परिणाम भी है। अपरिणामी उपादेय है। यह सोगानीजी की भाषा (में) बहुत है, मैं ए-परिणामी हूँ। परिणाम को परिणाम में रहने दो। सोगानीजी ने रखा तो सही अलोकाकाश में भेजा नहीं है। आहाहा! परिणाम को परिणाम में रहने दो, मैं (तो) ए-परिणामी हूँ! 'ए' शब्द बोलते थे। ए-परिणामी, अपरिणामी के बदले मैं तो ए-परिणामी हूँ। आहाहा!

एक बार माटुंगा में गुरुदेव का व्याख्यान था। मोदी साहब भी थे और मोदी साहब के परिचयवाले वीरनगरवाले, वीरचंद्र पानाचंद नाम है (वो भी थे)। साथ में उनके बंगले (पर) गए थे। वो (सोगानीजी से) अंतिम मुलाकात बम्बई में (हुई)। बाद में (वो) कलकत्ता गए और वहाँ स्वर्गवास हो गया।

तो वहाँ एक भाई ने ध्यान का विषय पूछा कि आत्मा का ध्यान कैसे करें? उसके उत्तर में (सोगानीजी ने) कहा, "मैं किसका ध्यान करूँ? मैं तो ध्येयरूप हूँ। पर्याय मेरा ध्यान करे तो करे।" यानि कितनी, पर्याय की (और) ध्यान की भी उपेक्षा और आत्मा की अपेक्षा। आहाहा! एकावतारी पुरुष थे। आहाहा! अभी स्वर्ग में हैं। गुरुदेव फरमाते हैं कि जब हम तीर्थंकर होंगे, होनेवाले और दीक्षा लेंगे-मुनि अवस्था, तब "नमः सिद्धेभ्यः" करेंगे, तब हमारा नमस्कार उनको (सोगानीजी को) पहुँचेगा, वे (तब) सिद्ध में होंगे। आहाहा! यह सुनी हुई बात है प्रत्यक्ष, हों! गुरुदेव की कही हुई बात है। आहाहा! तात्त्विक बात को पचाना बहुत कठिन है। पात्र जीव को पचती है, नहीं तो अजीर्ण (हो जाता है)।

मुमुक्षुः आज अजीर्ण नहीं होगा, केवलज्ञान का दिवस है।

पू. लालचंदभाईः (आज) केवलज्ञान का दिवस है। आहाहा!

तो जीव, ज्ञायकभाव **जीव है...**

जिनवाणी स्तुति।